

आधुनिक युग (19वीं सदी) से पूर्व स्त्री विमर्श

डा० आलोक कुमार राय

सहायक प्राचार्य (हिन्दी)

म०का०सू०महाविद्यालय,

चन्दौना, दरभंगा।

स्त्री अस्मिता का स्वरूप हर युग में बदलता रहा है। आदिम मानव जब जंगलों या पहाड़ों की गुफाओं में रहता था तो वह अपने तरह का समाजवाद ही था। संपत्ति नहीं थी और जब हुई तो सामूहिक हो गयी। परिवार का केंद्र स्त्री थी, क्योंकि उसी के द्वारा संतान की पहचान कायम की जा सकती थी। वह अपने परिवार की मुखिया होती थी और उसकी आज्ञा सबको शिरोधार्य करनी पड़ती थी। लेकिन जब मनुष्य के ज्ञान और गतिविधियों का विस्तार हुआ, तो एक नये ढंग का समाज बना, जिसके केंद्र में संचय था। इस संचय पर पुरुष ने कब्जा कर लिया, क्योंकि वह स्त्री की जैविक सीमाओं से मुक्त था और शारीरिक बल में भी उससे श्रेष्ठ था।¹ 'जिसकी लाठी, उसकी भैंस' का यह सिलसिला एक बार शुरू हो गया, तो फिर इसने रुकने का नाम नहीं लिया।

एंगेल्स के अनुसार, 'वन्य अवस्था और निम्न बर्बर अवस्था के सभी जनों में माता से ही वंशानुक्रम चलता है। मातृसत्तात्मक गोत्रों में किसी एक परिवार में स्त्रियों का गोत्र तो होता है, लेकिन पुरुषों का गोत्र अलग-अलग हो सकता है। घर की स्वामिनी नारी होती है, क्योंकि वंश उसी के हिसाब से चलता है। इसी कारण आदिम समाज में नारी का आधिपत्य रहता है। उत्पादन के विकास से ही नर-नारी के श्रम में महत्वपूर्ण विभाजन होता है। खेती और पशुपालन के प्रसार के साथ पुरुष आगे आता है और मातृसत्तात्मक परिवार के निर्मूल होने का समय आ जाता है।' वस्तुतः भारत में तब भी अनेक ऐसी जनजातियाँ हैं, जहाँ स्त्री ही पारिवारिक सत्ता का केंद्र है और वह किसी भी तथाकथित सभ्य समुदाय की स्त्री से ज्यादा स्वतंत्र है।

ऐसा माना जाता है कि वैदिक युग में पुरुष-स्त्री काफी हद तक समान थे। इसके प्रमाण में अनेक वैदिक चर्चाएँ की जाती हैं, जिनसे पता चलता है कि कुमारियाँ प्रेमियों को

ध्यान आकृष्ट करने के लिए उत्सवों में आभूषण पहन कर जाती है, प्रेमिका अपने प्रेमी से प्रणय निवेदन करती है, उससे उपहार भी स्वीकार करती है तथा रात के अंधकार में प्रेमिका से मुलाकात करने के लिए जाता हुआ प्रेमी यह कामना करता है कि सारा कुटुंब सोता रहे।² इतिहास में गार्गी और मैत्रेयी जैसी विदुषी आर्याओं के नाम भी मिलते हैं। लेकिन यह सच्चाई का सिर्फ एक पहलू है। दूसरा पहलू कहीं ज्यादा संगीन है। वास्तविक रूप में वैदिक समाज भी अंततः पितृसत्तात्मक ही था।

आपटे ने बताया है कि वैदिक चर्चाओं में भूमि और पशुओं के साथ पुत्रों की तो कामना की गयी है, लेकिन पुत्रियों की नहीं। इसका कारण यह है कि उत्पादकता में पुरुष प्रधान है, स्त्री का स्थान गौण है।³ इससे पता चलता है कि उस व्यवस्था में भी स्त्री को पुरुष के संदर्भ में ही परिभाषित किया गया था। ऋग्वेद के एक श्लोक में ब्रह्मचारिणी को आशीष दिया गया है कि जिस तरह लता वृक्ष से लिपट जाती है, उसी तरह तू अपने पति का आलिंगन कर और उसके मन को आकर्षित कर तथा वह तेरे मन को प्रसन्न करे।⁴ इससे स्पष्ट है कि यदि पुरुष वृक्ष है तो स्त्री लता। यानी पुरुष आधार है और स्त्री आधारित।

मनुस्मृति तक आते-आते स्त्री की हालत और दयनीय हो जाती है। इसके एक श्लोक में कहा गया है कि जो स्त्री जुआ आदि खेल में आसक्त, मतवाले रोगयुक्त पति की सेवा न करे, उसका निरादर करे, उसका पति तीन महीने के लिए उसको छोड़ दे और आभूषण छीन ले। कोई भी प्रेमपूर्ण स्त्री अपने ऐसे पति की भी सेवा करनी चाहेगी, लेकिन इसे अनिवार्य तथा ऐसा न करने को दंडनीय बना कर मनुस्मृतिकार ने स्त्री से सेवा की यह स्वैच्छिकता भी छीन ली है। मनुस्मृति में पुरुष को पुनर्विवाह के लिए कई अवसर दिये गये हैं: स्त्री बांझ हो तो आठवें वर्ष में, उसकी संतानें मरी हुई ही पैदा हों तो दसवें वर्ष में, केवल लड़की ही पैदा होती हो तो ग्यारहवें वर्ष में और दुर्वचन कहनेवाली हो तो शीघ्र ही अपना दूसरा विवाह कर लेना उचित है। लेकिन स्त्री को ऐसा कोई अधिकार नहीं दिया गया है। मनुस्मृति मानती है कि पति के द्वितीय विवाह करने पर जो स्त्री कुपित हो कर घर

से बाहर चली जाये, उसे घर में बंद कर देना चाहिए अथवा पिता के घर भेज देना चाहिए। इतना ही नहीं, मनुस्मृति का स्पष्ट मत है कि स्त्री कभी स्वतंत्र होने योग्य नहीं है। स्त्री की रक्षा की जिम्मेदारी बचपन में पिता, युवावस्था में पति और वृद्धावस्था में पुत्र को दी गयी है।

महाभारत काल में स्त्री जितनी स्वतंत्र तथा स्वच्छंद थी, पुरुष उससे कहीं ज्यादा स्वच्छंद तथा औरतबाज थे। लेकिन कुल मिला कर पुरुष की प्रभुता के दृश्य ही ज्यादा दिखाई पड़ते हैं।⁵ पुरुष इतने मनमौजी तथा लोलुप थे कि किशोरियों से भी यौन सुख हासिल करने की कोशिश करते थे। इसका सबसे प्रबल उदाहरण कुंती के साथ सूर्य का समागम है। उस समय तक कुंती को रजोदर्शन नहीं हुआ था यानि उसे मासिक नहीं होता था। इतना ही नहीं, 'अनुशासन पर्व' के दूसरे अध्याय में सुदर्शन अपनी पत्नी ओबवती से कहता है, गृहस्थाश्रम धर्म के अनुसार व्यवहार करने के लिए मैं प्रतिज्ञाबद्ध हूँ, अतः तुम अतिथि के विरोध में किसी भी प्रकार का बरताव न करो। यह नहीं, समय आने पर तुम अपना शरीर भी अतिथि को अर्पित करने में न हिचकिचाओ।

शोधकर्ता भले ही यह बताते रहें कि सम्पूर्ण मानव जाति के कुछ महत्त्वपूर्ण पड़ाव महिलाओं की रचनात्मकता पर भी आधारित थे – मानव जाति को जानवरों के स्तर से अलग उठाने में महिलाओं की ही भूमिका रही – लेकिन कौन इसे स्वीकारता है।⁶ वास्तविक रूप में, इतिहास ने, धर्म ने और साहित्य ने स्त्री को सदैव गुलाम ही समझा है।

मध्यकाल में रामचरित मानस की यह चौपाई – ढोल, गँवार, शूद्र, पशु, नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी— हमारे समाज की मानसिकता की सटीक अभिव्यक्ति है। यह मानसिकता हिंदू समाज की ही नहीं है, सारे मनुष्य—समाज की रही है। यह एक हकीकत है, स्त्री की गुलामी पर एक बेबाक टिप्पणी है। इन्हें तुलसी के विचार कहकर सारा दोष उनके मत्थे मढ़ना उचित नहीं है। तुलसी ने एक चौपाई और भी लिखी है जिसकी अर्धली है 'पराधीन सपनेहुँ सुख नाही'। इसका संदर्भ लोग नहीं जानते, क्योंकि कुछ पाठों में संदर्भ बदल दिया गया है। ये पार्वती की माँ के उद्गार हैं जो पार्वती को विदा करते समय उसके

मुँह से निकले थे। पूरी चौपाई इस प्रकार है, कत विधि सिरजी नारि जग माँही, पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं। ब्रह्मा ने नारी को बनाया ही क्यों जो उसे सपने में भी पराधीनता मिली।⁷ हिंदू समाज में नारी को बहुत आदर का स्थान दिया गया है, ऐसा कहनेवाले दंभी लोगों को 'रामचरितमानस' की इन दोनों चौपाइयों का मनन करना चाहिए।

मध्यकाल में ही मीराबाई, सहजोबाई, जनाबाई, रामी, महादेवी अक्का, सुले सनकवा, जंगासती, रतनबाई, आतुकुरी मौल्ला, बहिनाबाई, गुलबदन बेगम, चौन्द्रबौती, संधिया होनम्मा आदि वे स्त्रियाँ हैं जो पूरे भारत की हैं। अपनी-अपनी भाषा में इन्होंने अपने-अपने दुःख व्यक्त किए। मीराबाई ने यदि राजमहल छोड़ दिया तो दूसरी ओर चौदहवीं-पन्द्रहवीं सदी में गुजराती में गंगासती व रतनबाई और मराठी में जनाबाई ने समाज में व्याप्त रूढ़ियों के खिलाफ विद्रोह किया।⁸ जहाँ पुरुष रचनाकार इस लोक को छोड़कर परलोक के सपने देखते थे वहाँ स्त्री रचनाकारों ने इसी लोक में व्याप्त रूढ़ियों के खिलाफ मोर्चा खोला क्योंकि इन रूढ़ियों का सबसे पहला शिकार वे ही होती थी।

उन्नीसवीं सदी से ही सही मायनों में महिला समस्याओं की तरफ पुरुषों का ध्यान गया। राजा राममोहन राय ने सती प्रथा के खिलाफ मुहिम चलाई। ईश्वर चन्द्र विद्यासागर ने महिला शिक्षा और विधवा विवाह की वकालत की। गुजरात में दयानन्द सरस्वती ने महिला शिक्षा के लिए अभियान छेड़ा। उसी तरह महाराष्ट्र में महादेव गोविन्द रानाडे, बेहराम जी, केशवकर्णे, ज्योतिबा फुले, सावित्री बाई फुले, गोपालकृष्ण गोखले आदि ने महिला शिक्षा का जोरदार समर्थन किया। यद्यपि समाज सुधारकों के अपने अन्तर्विरोध भी कोई कम नहीं थे। लेकिन नवजागरण काल को हम महिला पक्षधरता का काल भी कह सकते हैं इसीलिए साहित्य की कोटि में सिर्फ उपन्यास-कहानियों को न रखकर उन्नीसवीं सदी के समाज सुधारकों के लेखन को रखना चाहिए।⁹ इसका कारण यह है कि महिलाओं की आज की स्थिति के लिए पृष्ठभूमि उसी काल में तैयार की गई।

संदर्भ सूची :-

¹ स्त्रीत्ववादी विमर्श: समाज और साहित्य – क्षमा शर्मा, राजकमल प्रकाशन, पृ.सं.-101

- ² स्त्री, परंपरा और आधुनिकता, सम्पादक-राजकिशोर, वाणी प्रकाशन, पृ.सं.-23
- ³ स्त्री-पुरुष : कुछ पुनर्विचार- राजकिशोर, वाणी प्रकाशन, पृ.सं.-31
- ⁴ वही, पृ.सं.-32
- ⁵ वही
- ⁶ वही
- ⁷ वही, पृ.सं.-34
- ⁸ स्त्रीत्ववादी विमर्श: समाज और साहित्य - क्षमा शर्मा, राजकमल प्रकाशन, पृ.सं.-101
- ⁹ स्त्री, परंपरा और आधुनिकता, सम्पादक-राजकिशोर, वाणी प्रकाशन, पृ.सं.-23